REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 8 | ISSUE - 4 | JANUARY - 2019

ब्रिटिश भारत में प्रशासनिक गठन तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक नीतियाँः एक अवलोकन

प्रेम शंकर राय
एम० ए० (इतिहास), बी० एड० आदर्श नगर, फुलवारीशरीफ, पटना

सारांश :

भारत में ब्रिटिश प्रशासन तीन खंभों पर टिका हुआ था। वे थे नागरिक सेवा (सिविल सर्विस), सेना और पुलिस। ऐसा दो वजहों से था। पहला कारण, ब्रिटिश भारत के प्रशासन का मुख्य लक्ष्य कानून और व्यवस्था को बनाए रखना तथा ब्रिटिश शासन को स्थायी बनाना था। कानून और व्यवस्था के अभाव में ब्रिटिश सौदागर और ब्रिटिश विनिर्माता अपनी वस्तुओं को भारत के कोने–कोने में बेचने की उम्मीद नहीं रख सकते थे। फिर विदेशी होने के कारण अंग्रेज भारतीय जनता का स्नेह पाने की आशा नहीं कर सकते थे। इसीलिए उन्होंने भारत पर अपना नियंत्रण बनाए रखने के लिए जन समर्थन के बदले शक्ति का सहारा लिया।

मुख्य शब्द– प्रशासन, ब्रिटिश, संगठन, कानून, व्यवस्था

प्रस्तावना

1784 तक ईस्ट इंडिया कंपनी के भारतीय प्रशासन को ब्रिटिश सरकार ने अपने नियंत्रण में ले लिया था और उसकी आर्थिक नीतियां ब्रिटिश अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं को देखते हुए निर्धारित की जाने लगी थीं। अब हम उस संगठन की चर्चा करेंगे जिसके जरिए कंपनी ने अपने नव प्राप्त उपनिवेश की शासन व्यवस्था का संचालन किया।

आरंभ में कंपनी ने भारत स्थित अपने इलाकों का प्रशासन भारतीयों के हाथों में छोड़ दिया था और तब उसकी गतिविधियां देख–रेख तक ही सीमित रह गई थीं (मगर उसने जल्द ही समझ लिया कि प्रशासन के पुराने तौर–तरीकों का अनुसरण करने से ब्रिटिश उद्देश्य ठीक से प्राप्त नहीं हो सकते। फलस्वरूप कंपनी न प्रशासन क कुछ पहलुओं को अपने हाथों में ले लिया। वारेन हेस्टिंग्स और कॉनवॉलिस के शासनकाल में ऊपर के प्रशासन में आमूल परिवर्तन किया गया और नई व्यवस्था की नींव अंग्रेजी प्रशासनोक ढांचे की तर्ज पर रखी गई। नए क्षेत्रों में ब्रिटिश सत्ता के विस्तार, नई समस्याओं, नई आवश्यकताओं, नए अनुभवों और नए विचारों के फलस्वरूप उन्नीसवीं सदी में प्रशासन की व्यवस्था में अधिक गंभीर परिवर्तन हुए। मगर इन परिवर्तनों के दौरान साम्राज्यवाद के व्यापक उद्देश्यों को कभी नहीं भूलाया गया।

नागरिक सेवा (सिविल सर्विस)

नागरिक सेवा (सिविल सर्विस) का जन्मदाता लॉर्ड कॉर्नवॉलिस था। कर्मचारियों को बहुत कम मजदूरी दी जाती थी मगर उन्हें अपना निजी यापार करने की इजाजत थी। बाद में जब कंपनी एक क्षेत्रीय शक्ति बन गई तब उन्हीं कर्मचारियों ने प्रशासनिक कार्य करने आरंभ किए। वे तब अत्यंत भ्रष्ट हो गए। स्थानीय बुनकरों और दस्तकारों, सौदागारों और जमींदारों का उत्पीड़न कर, राजाओ और नवाबों से घूस और नजराना ऐंठकर गैरकानूनी निजी व्यापार के जरिए उन्होंने अकृत संपदा

इकट्ठा की, और उसे लेकर सेवानिवृत्त हो इंग्लैंड चले गए। क्लाइव और वारेन हेस्टिंग्स ने उनके भ्रष्टाचार को समाप्त करने के प्रयास किए मगर वे इस काम में आंशिक रूप से ही सफल रहे।

वास्तव में, सेवाओं के उच्च वेतनमानों से भारतीयों को वंचित रखने की नीति जानबूझकर अपनाई गई थी। इन सेवाओं की जरूरत उस समय भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना करने तथा उसे मजबूत करने के लिए थी। जाहिर है कि यह काम भारतीयों पर नहीं छोड़ा जा सकता था जिनमें अंग्रेजों की तरह ब्रिटिश हितों के लिए न तो एक सहज सहानुभूति थी और न उनकी सी समझदारी। वस्तुतः इन नियुक्तियों को लेकर उनके बीच घनघोर संघर्ष हुए। नियुक्ति करने का अधिकार कंपनी के निदेशकों और ब्रिटिश मंत्रिमंडल के बीच बहुत दिनों तक विवाद का विषय बना रहा। ऐसी स्थिति में अंग्रेज भारतवासियों को इन जगहों पर कैसे आने देते? मगर छोटे ओहदों के लिए भारतवासियों को बड़ी संख्या मे भर्ती किया गया क्योंकि वे अंग्रेजों की अपेक्षा कम वेतन पर तथा आसानी से उपलब्ध थे।

भारतीय नागरिक सेवा (इंडियन सिविल सर्विस) धीरे–धीरे दुनिया की एक अत्यंत कुशल और शक्तिशाली सेवा के रूप में विकसित हो गई। उसके सदस्यों को काफी अधिकार थे और बहुधा वे नीति–निर्माण के कार्य में भाग लेते थे। उन्होंने आजादी, ईमानदारी और कठिन परिश्रम की कतिपय परंपराएं विकसित कीं, यद्यपि इन गुणों ने स्पष्टतया भारतीय हितों की नहीं बल्कि ब्रिटिश हितों को साधा। उनको यह विश्वास हो गया कि भारत पर शासन करने का उन्हें लगभक दैविक अधिकार मिल गया है। कालक्रम से भारतीय जीवन में जो कुछ भी प्रगतिशील और उन्नत बातें थीं उनकी यह विरोधी बन गई और इस प्रकार वह उदीयमान भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के हमले का निशाना बनीं।

सेना

भारत में ब्रिटिश राज के दूसरे महत्वपूर्ण स्तंभ के रूप में सेना थ। उसने तीन महत्वपूर्ण कार्य किए। वह भारतीय शक्तियों को जीतने के लिए औजार बनीं। उसने विदेशी प्रतिद्वंद्वियों से भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा की और सदा वर्तमान आंतरिक विद्रोह के खतरे से ब्रिटिश प्रभुसत्ता को बचाए रखा। एशिया और अफ्रीका में ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा का भी यही प्रमुख हथियार थी।

कंपनी की अधिकांश सेना भारतीय सिपाहियों की थी जिन्हें मुख्य रूप से उन क्षेत्रों से भर्ती किया गया था जो अभी उत्तर प्रदेश और बिहार में हैं। उदाहरण के लिए, 1857 में कंपनी की फौज में 3,11,400 सैनिक थे जिनमें से 2,65,900 भारतीय थे। मगर उसके अफसर निश्चित रूप से कॉर्नवॉलिस के जमाने से केवल अंग्रेज होते थे। 1856 में सेना में केवल तीन ऐसे भारतीय थे जिनको 300 रूपए प्रति माहवेतन मिलता था और सबसे ऊंचा भारतीय अफसर एक सूबेदार था। बड़ी संख्या में भारतीय सैनिकों को काम पर लगाना पड़ता था क्योंकि ब्रिटिश सैनिक अपेक्षाकृत अधिक खर्चीले थे। इसके अलावा, ब्रिटेन की जनसंख्या इतनी कम थी कि वह शायद भारत को जीतने के लिए बड़ी संख्या में सैनि नहीं दे सकती थी। संतुलन के लिए फौज के सारे अफसर अंग्रेज रखे जाते थे और भारतीय सैनिकों को नियंत्रण में रखने के लिए ब्रिटिश सैनिको को एक निश्चित संख्या में रखा जाता था। अब इस पर बड़ा अचरज होता है कि मुट्ठी भर विदेशी ऐसी फौज के जरिए भारत को जीतने और नियंत्रित करने में सफल हो सके, जिसमें भारतीयों का ही बहुमत था। ऐसा दो कारणों से संभव हुआ। एक ओर उस समय देश में आधुनिक राष्ट्रीयता का अभाव था। बिहार या अवध के किसी सैनिक ने न यह सोचा और न ही वह यह सोच सकता था कि मराठों या पंजाबियों को हराने में कंपनी की सहायता कर वह भारत विरोधी हा रहा है। दूसरी ओर, भारतीय सैनिक की यह बड़ी पुरानी परंपरा रही थी कि वह जिससे वेतन पाए उसकी निष्ठापूर्वक सेवा करे। इसे आमतौर से ''नमकहलाली'' कहा जाता था। दूसरे शब्दों में, भारतीय सैनिक भाड़े का एक बढ़िया सिपाही था और कंपनी एक अच्छी वेतनदाता थी। उसने अपने सैनिकों को नियमित रूप से और अच्छा वेतन दिया। यह एक ऐसी चीज थी जो भारतीय शासक और सरदार उस समय नहीं कर रहे थे।

पुलिस

पुलिस ब्रिटिश शासन का तीसरा स्तंभ थी। उसका सृजन करने वाला भी कॉर्नवॉलिस ही था। उसने जमींदारों को पुलिस कार्यो स मुक्त कर दिय और कानून तथा व्यवस्था बनाए रखने के लिए एक नियमित

पुलिस दल की स्थापना की। इसके लिए उसने थानों की पुरानी भारतीय व्यवस्था को आधुनिक बनाया। दिलचस्प बात यह है कि पुलिस व्यवस्था के मामले में भारत ब्रिटेन से आगे हो गया। उस समय तक ब्रिटेन में पुलिस व्यवस्था विकसित नहीं हुई थी। कॉर्नवॉलिस ने थानों की व्यवस्था स्थापित की। हर थाने का प्रधान दरोगा था जो भारीतीय होता था। बाद में, पुलिस के जिला सुपरिंटेंडेंट (अधीक्षक) का पद बनाया गया। सुपरिटेंडेंट जिले में पुलिस संगठन का प्रधान हो गया। पुलिस में भी भारतीयों को सभी ऊँचे ओहदों से अलग रखा गया। गावों में पुलिस की जिम्मेदारियों को चौकीदार निभाते थे जिनका भरण–पोषण गांव वाले करते थे। पुलिस धीरे–धीरे डकैती जैसे प्रमुख अपराधों को कम करने में सफल हो गई। पुलिस ने विदेशी नियंत्रण के विरूद्ध बड़े पैमाने पर षड्यंत्रों को भी रोका और जब राष्ट्रीय आंदोलन का उदय हुआ तब पुलिस पर षड्यंत्रों को भी रोका और जब राष्ट्रीय आंदोलन का उदय हुआ तब पुलिस का इस्तेमाल उसे दबाने के लिए किया गया।

न्यायिक संगठन

दीवानी और फौजदारी कचहरियों के श्रेणीबद्ध संगठन के जरिए न्याय प्रदान करने की एक नई व्यवस्था की नींव अंग्रेजों ने रखी। इस व्यवस्था को वारेन हेस्टिंग्स ने आरंभ किया मगर कॉर्नवॉलिस ने 1793 में इसे और सुदृढ़ बनाया। हर जिले में एक दीवानी अदालत कायम की गई जिसका प्रमुख जिला जज होता था, जो नागरिक सेवा का सदस्य होता था। इस तरह कार्नवॉलिस ने दीवानी जज और कलक्टर के ओहदों को अलग–अलग कर दिया। जिला अदालत के फैसलों के खिलाफ अपील पहले दीवानी अपील की चार प्रांतीय अदालतों में हो सकती थी। अपील की आखिर सुनवाई सदर दीवानी अदालत ही कर सकती थी। जिला अदालत के नीचे रजिस्ट्रार की अदालतें थी जिनके प्रधान यूरोपवासी होते थे और अनेक छोटी अदालतें थीं जिनके प्रधान भारतीय जज होते थे जिन्हें मुंसिफ और अमीन कहा जाता था। फौजदारी मुकदमों का निपटारा करने के लिए कॉर्नवॉलिस ने बंगाल प्रेसिडेंसी को चार डिविजनों में बांट दिया। उसने उनमें से हर एक में एक क्षेत्रीय न्यायालय (कोर्ट ऑफ सर्किट) स्थापित किया जिनके प्रधान नागरिक सेवा के लोग होते थे। इन अदालतों के नीचे छोटे–छोटे मुकदमों का फैसला करने के लिए बड़ी संख्या में भारतीय मजिस्ट्रेट होते थे। क्षेत्रीय न्यायालय (कोर्ट ऑफ सर्किट) के फैसलों के खिलाफ सदर निजामत अदालत में अपील की जा सकती थी। फौजदारी अदालतों ने मुस्लिम फौजदारी कानून को संशोधित किया और कम सख्त रूप से लागू किया जससे शरीर के अंगों को काटने या इस प्रकार की अन्य सजाएं देने की मनाही कर दी गई। दीवानी अदालतों ने उस पारंपरिक कानून को लागू किया जो किसी क्षेत्र या जनता के किसी हिस्से के बीच बहुत पुराने जमाने से चला आ रहा था। विलियम बैंटिंक ने 1831 में अपील को प्रांतीय अदालतों तथा क्षेत्रीय न्यायालयों को खत्म कर दिया। उनका काम पहले कमीशनों और बाद में जिला जजों और जिला कलक्टरों को सौंप दिया गया। बैटिंक ने न्यायिक सेवा में काम करने वाले भारतीयों के दर्जे और अख्तियार बढ़ा दिए। उसने भारतीयों को डिप्टी मजिस्ट्रेट, सबार्डिनेट जज और प्रिंसिपल सदर अमीन नियुक्त किया। सदर दीवानी अदालत और सदर निजामत अदालत की जगह 1865 में कलकत्ता, मद्रास और बंबई में उच्च न्यायालय (हाई कोर्ट) स्थापित किए गए।

कानून का शासनः– अंग्रेजों ने कानून के शासन या विधि–शासन (Rule of law) की आधुनिक अवधारणा को लागू किया। इसका तात्पर्य था कि उनका प्रशासन कम से कम सैद्धांतिक रूप में कानूनों के अनुसार चलाया जाएगा, न कि शासक की सनक या वैयक्तिक इच्छा के अनुसार। कानूनों ने प्रजा के अधिकारों, विशेषाधिकारों और जिम्मेदारियों को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया था। बेशक, व्यवहार में अफसरशाही और पुलिस को मनमाने अख्तियार थे और उन्होंने जनता के अधिकारों और स्वतंत्रताओं में हस्तक्षेप किया। कानून का शासन कुछ हद तक व्यक्ति की वैयक्तिक स्वतंत्रता की गारंटी था। यह सही है कि भारत के पिछले शासक आमतौर से रीति–रिवाज से बंधे होते थे, मगर उन्हें अपनी इच्छानुसार कोई भी प्रशासनिक कदम उठाने का कानूनी अधिकार था और उनसे बड़ी कोई ऐसी सत्ता नहीं थी जिसके सामने उनकी कारवाईयों को चुनौती दी जा सके। कभी–कभी भारतीय शासकों और सरदारों ने अपनी इच्छानुसार इस शक्ति का प्रयोग किया। दूसरी ओर, ब्रिटिश शासन के अतर्गत प्रशासन मुख्य रूप से कानूनों के आधार पर न्यायालयों द्वारा उनकी की गई व्याख्या के अनुसार चलाया जाता था। कानून बहुधा त्रुटिपुर्ण होते थे। कानून जनता द्वारा लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं के

द्वारा नहीं बल्कि विदेशी शासकों द्वारा निरंकुश तरीकों से बनाए जाते थे। कानून सरकारी कर्मचारियों तथा पुलिस के हाथों में काफी अख्तियार दे देते थे। मगर शायद एक विदेशी राज के अंतर्गत यह अवश्यंभावी था। विदेशी राज स्वभावतः लोकतांत्रिक या स्वतंत्रतावादी नहीं हो सकता।

कानून के सम्मुख समानताः–

अंग्रेजी राज के दौरान भारतीय विधि प्रणाली कानून के सम्मुख समानता की अवधारणा पर आधारित थी। इसका मतलब था कि कानून की निगाहों में सारे मनुष्य बराबर हैं। जाति, धर्म या वर्ग के आधार पर बिना किसी भेदभाव के एक ही कानून सब लोगों पर लागू होता था। पहले न्यायप्रणाली जाति के भेदभावों का ख्याल करती थी और तथाकथित उच्च जाति और निम्न जाति के बीच भेदभाव करती थी। एक ही अपराध के लिए एक गैर–ब्राह्मण की अपेक्षा एक ब्राह्मण को हल्का दंड दिया जाता था। इसी प्रकार जमींदारों और सामंतों को वास्तविक रूप से इतना कड़ा दंड नहीं दिया जाता था, जितना एक आम आदमी को। वस्तुतः उनके खिलाफ उनकी कारवाईयों के लिए अक्सर मुकदमा नहीं चलाया जाता था। अब दीन–हीन लोग भी न्यायालय में जा सकते थे।

सामाजिक और सांस्कृतिक नीति

ब्रिटिश अधिकारियों ने भारतीय अर्थव्यवस्था का पुनर्गठन ब्रिटिश व्यापार और उद्योग के हितों में किया और व्यवस्था और सुरक्षा की गारंटी के लिए एक आधुनिक प्रशासनिक व्यवस्था की स्थापना की। 1813 तक अंग्रेजों ने देश के धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में गैर हस्तक्षेप की नीति अपनाई। मगर 1813 के बाद उन्होंने भारतीय समाज और संस्कृति के रूपांतरण के लिए सक्रिय कदम उठाए। इसके पहले उन्नीसवीं सदी के दौरान ब्रिटेन में नए हितों और नए विचारों का उदय हुआ था। औद्योगिक क्रांति अठारहवीं सदी के मध्य में आरंभ हुई थी जिसके फलस्वरूप औद्योगिक पूंजीवाद का विकास ब्रिटिश समाज के सभी पहलुओं को तजी से बदल रहा है। उदीयमान औद्योगिक हितों ने भारत को अपनी वस्तुओं के लिए बड़े बाजार के रूप में बदलना चाहा। ऐसा केवल शांति बनाए रखने की नीति के जरिए नहीं हो सकता था बल्कि इसके लिए भारतीय समाज के आंशिक रूपांतरण और आधुनिकीकरण की आवश्यकता थी। और इस प्रकार, इतिहासकारों, थाम्पसन और गैर्रेट के शब्दों में, 'पुरानी बटमारी की मनोदशा और तरीके, आधुनिक उद्योगवाद तथा पूंजीवाद की मनोदशा व तरीकों में बदल गए।'

विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने भी मानवीय प्रगति की नई प्रत्याशाएं उत्पन्न कर कर दी। अठारहवीं और उन्नीसवीं सदियों के दौरान ब्रिटेन तथा यूरोप में नए विचारों का एक नया ज्वार देखा गया जिसने भारतीय समस्याओं के प्रति ब्रिटिश दृष्टिकोण को प्रभावित किया। सारे यूरोप में 'सोच–विचार, तौर–तरीकों और नैतिकता के नए दृष्टिकोण सामने आ रहे थे। 1789 की महान फ्रांसीसी क्रांति ने अपने स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व के संदेश द्वारा शकितशाली जनतांत्रिक भावनाएं उत्पन्न कीं और आधुनिक राष्ट्रीयता की शक्ति को फैलाया। नई प्रवृत्ति का चिंतन के क्षेत्र में प्रतिनिधित्व बेकन, लॉक, वॉलटेयर, रूसो, कांट–एडम स्मिथ और बथम व साहित्य के क्षेत्र में वड्र्सवर्थ, बायरन, शैली और चार्ल्स डिकेंस ने किया। नया चिंतन अठारहवीं शताब्दी की बौद्धिक क्रांति, फ्रांसीसी क्रांति और औद्योगिक क्राति से उत्पन्न हुआ था। सभवतः इस नए चिंतन का प्रभाव भारत में महसूस किया गया तथा उसने सरकार की शासकीय धारणाओं को भी कुछ हद तक प्रभावित किया।

नए चिंतन की तीन मुख्य विशेषताएं थीः विवेकशीलता या तर्क और विज्ञान में विश्वास, मानवतावाद या मनुष्य के प्रति प्रेम, मानव की प्रगति करने को क्षमताा में आस्था। विवेकशील और वैज्ञानिक, दृष्टिकोण इस बात का सूचक था कि केवल वही चीज सही मानी जाएगी जो मानव तर्क के अनुकूल हो और व्यवहार में जिसकी परीक्षा की जा सके। सत्रहवीं, अठारहवीं सदियों की वैज्ञानिक प्रगति तथा उद्योग में विज्ञान' के प्रयोग से प्राप्त उत्पादन की विशाल शक्तियां मानवीय तर्कशक्ति का प्रकट प्रमाण थीं। मानवतावाद इस धारणा पर आधारित था कि प्रत्येक मानव प्राणी अपने आप ही साध्य है और इसी रूप में उसका सम्मान किया जाना चाहिए और उसे महत्त्व दिया जाना चाहिए। किसी भी मनुष्य को यह अधिकार नहीं हो सकता कि वह दसरे को अपने सुख का माध्यम समझे। मानवतावादी दृष्टिकोण ने व्यक्तिवाद, उदारतावाद और समाजवाद के सिद्धांतों को जन्म दिया। प्रगति के सिद्धांत के अनुसार सभी समाजों को समय के साथ अवश्य बदलना होता है। कोई

भी चीज न जड़ थी और न जड़ हो सकती ह। इसके अलावा मनुष्य में प्रकृति और समाज को विवेकशील तथा उचित रूपरेखा के अनुसार फिर से ढालने की क्षमता है।

लोकोपकारी कार्रवाईयाँ

भारतीय समाज को उसकी कुरीतियों से मुक्त करने के लिए किए गए ब्रिटिश सरकार के प्रयास कुल मिलाकर बहुत कम थे और इसलिए उनका कुछ विशेष परिणाम नहीं हुआ। उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि थी 1829 में सती प्रथा को गैरकानूनी घोषित करने की कार्रवाई। विलियम बैंटिंक ने घोषित किया कि पति की चिता पर विधवा के जल मरने की कार्रवाई में जो भी सहयोगी होंगे, उन्हें अपराधी माना जाएगा। इसस पहले ब्रिटिश शासकों ने सती प्रथा को रोकने के प्रश्न पर उदासीन रूख अपनाया था। उन्हें डर था कि सती प्रथा के खिलाफ किसी भी तरह की कार्रवाई करने से रूढ़िवादी भारतीय नाराज हो जाएंगे। जब राममोहन राय और अन्य प्रबुद्ध भारतीयों तथा धर्मप्रचारकों ने इस अमानवीय प्रथा को खत्म करने के लगातार आंदोलन किए तब जाकर सरकार सती प्रथा को रोकने के लोकोपकारी कदम उठाने के लिए सहमत हुई। भुतकाल में अकबर और औरंगजेब, पेशवाओं और जयपुर के राजा जयसिंह ने इस कुप्रथा को दबाने के लिए प्रयास किए, लेकिन वे असफल रहे। कुछ भी हो, इस प्रथा को गैरकानूनी घोषित करने के लिए बैंटिंक प्रशंसा का पात्र है। इस कुप्रथा के कारण 1815 और 1818 के बीच केवल बंगाल में ही 800 महिलाओं ने अपनी जान गंवाई थी। बैंटिंक इसलिए भी प्रशंसा का पात्र है कि उसने सती प्रथा के रूढ़िवादो समर्थकों के विरोध के सामने झुकने से इंकार कर दिया।

पैदा होते ही लड़कियों को मार देने की प्रथा कुछ राजपूत खानदानों तथा अन्य जातियों में प्रचलित थी। इसके मुख्य कारण थे लड़ाइयों मे बड़ी संख्या में मरने के कारण नौजवनों की कमी तथा ऊसर क्षेत्रों म जीविकोपाजन में कठिनाइयां। यह प्रथा पश्चिम और मध्य भारत में दहेज की कुप्रथा के भयंकर रूप में विद्यमान होने के कारण प्रचलित थी। शिशु हत्या को रोकने के संबंध में कानून 1795 और 1802 में बनाए गए थे मगर उन्हें सख्ती से बैंटिक और हार्डिंग ने ही लागू किया। हार्डिंग ने नर बलि की प्रथा को खत्म करने के लिए भी कानून बनाया। यह प्रथा गोंड नाम की आदिम जाति में प्रचलित थी। भारत सरकार ने 1856 में हिंदू विधवाओं के पुनर्विवाह के लिए कानून पास किया। सरकार ने पंडित ईश्वरचंद्र विद्यासागर और अन्य सुधारकों द्वारा इसके पक्ष में लगातार आंदोलन चलाने के बाद यह कार्रवाई की। इस कानून के तात्कालिक प्रभाव कुछ विशेष नहीं हुए।

इन सब सरकारी सुधारों ने भारतीय समाज व्यवस्था को सतही तौर पर ही प्रभावित किया तथा जनता के विशाल बहुमत के जीवन पर इसका कोई खास असर नहीं पड़ा शायद एक विदेशी सरकार के लिए इससे अधिक कुछ करना संभव नहीं था।

आधुनिक शिक्षा का प्रसार

अंग्रेज आधुनिक शिक्षा आरंभ करने में अधिक सफल रहे। निःसंदेह आधुनिक शिक्षा का प्रसार केवल सरकार के प्रयास से ही नहीं हुआ। ईसाई धर्मप्रचारकों और बड़ी संख्या में प्रबुद्ध भारतीयों ने भी इस कार्य में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। अपने शासन के पहले 60 वर्षो के दौरान ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपनी प्रजा की शिक्षा में नाममात्र दिलचस्पी ली। यह मुनाफा कमाने वाली एक व्यापारिक संस्था रही। परंतु इसके दो बहुत ही छोटे अपवाद रहे। वारेन हेस्टिंग्स ने 1781 में मुस्लिम कानून और संबद्ध विषयों के अध्ययन और पढ़ाई के लिए कलकत्ता मदरसा स्थापित किया। जोनाथन डंकन ने 1791 में हिंदू कानून और दर्शन के अध्ययन के लिए वाराणसी में संस्कृत कॉलेज स्थापित किया। वह वाराणसी में रेजीडेंट था। दोनों संस्थाओं की स्थापना इस उद्देश्य से की गई थी कि उनसे कंपनी की अदालतों में न्याय–प्रशासन के लिए योग्य भारतीय नियमित रूप से मिल सकें।

धर्मप्रचारकों और उनके समर्थकों सहित अनेक लोकोपकारी व्यक्तियों ने कंपनी पर तुरंत दबाव डालना आरंभ किया कि वह भारत में आधुनिक धर्मनिरपेक्ष पश्चिमी शिक्षा को बढ़ावा दे। अनेक भारतीयों सहित समाजसेवी लोगों की धारणा थी कि आधुनिक ज्ञान ही देश की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक कुरीतियों की सर्वोत्तम दवा है। लेकिन धर्मप्रचारकों को विश्वास था कि आधुनिक शिक्षा अपने धर्मो में लोगों की आस्था

को खत्म कर देगी और वे ईसाई धर्म ग्रहण करने के लिए प्रेरित होंगे। एक मामूली सी शुरूआत 1813 में की गई जब चार्टर ऐक्ट में विद्वान भारतीयों को बढ़ावा देने तथा देश में आधुनिक विज्ञानों के ज्ञान को प्रोत्साहित करने का सिद्धांत शामिल कर लिया गया। इस ऐक्ट के तहत कंपनी को इस उद्देश्य के लिए एक लाख रूपए खर्च करने का निर्देश दिया गया। मगर 1823 तक कंपनी के अधिकारियों ने इस काम के लिए यह तुच्छ रकम भी नहीं दी।

निष्कर्ष

शिक्षा और आधुनिक विचार उच्च वर्गो से छन कर या निकल कर निचले वर्गो के लोगों को प्राप्त होंगे। यह नीति ब्रिटिश शासन के बिल्कुल अंत तक चली, हालांकि इसे सरकारी तौर पर 1854 में छोड़ दिया गया था। यहां इस बात का उल्लेख आवश्यक है कि यद्यपि शिक्षा रिसकर नीचे नहीं गई किंतु आधुनिक विचार बहुत हद तक आम लोगों के बीच फैले, पर शासकों ने जिस रूप में चाहा था, उस रूप में ऐसा नहीं हुआ। स्कूलों और पाठ्य–पस्तकों के जरिए नहीं बल्कि राजनीतिक दलों, पत्र–पत्रिकाओं, पुस्तिकाओं और सार्वजनिक मंचों के माध्यम से शिक्षित भारतीय एवं बुद्धिजीवियों ने ग्रामीण और शहरी जनता के बीच जनतंत्र, राष्ट्रीयता, साम्राज्यवाद विरोध और सामाजिक और आर्थिक समानता तथा न्याय के विचारों का प्रचार किया। यदि शिक्षा इन विचारों का वाहक बनी भी तो ऐसा उसने परोक्ष रूप से ही किया। इसने लोगों को समाजविज्ञानों तथा मानविकी मे कुछ साहित्य उपलब्ध कराया। इससे उनकी सामाजिक विवेचन की क्षमता बढ़ी। अन्यथा इस शिक्षा का ढाँचा और खाका, इसके लक्ष्य, पद्धतियों और पाठ्यक्रम की रचना साम्राज्यवाद को सुरक्षित रखने के लिए की गई थी।

संदर्भ सूची

1. मुखर्जी मृदुला, पिसेन्टस इन इंडिया नन वॉइलेंट रिवोलुशन प्रेक्टिस एण्ड थेयोरी, सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली
2. गुप्ता, डी, एन, भगत सिंहः सेलेक्टेड स्पीच एण्ड राइटिंग, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली।
3. जैन वी.के. 1990: ट्रेड एंड ईडर्स इन वेस्टर्न इंडियाः नई दिल्ली, मनोहरलाल प्रकाशन
4. डेयल, जॉन एस. 1990: द हिस्ट्री ऑफ अली मेडाइवल, देहली, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
5. देवाहुतिः डी. 1983: ब्रिटिश पोलिटिकल स्टडी, द्वितीय संस्करण, दिल्ली, ऑक्सफोर्ड प्रकाशन
6. चंपालक्ष्मी आर, 1986: ट्रेड आइडियोलॉजी एंड अर्बनाइजेशन ऑफ इंडिया, देहली, ऑक्सफोर्ड प्रकाशन
7. गुप्ता, डी. एन. भगत सिंहः सलेक्टेड स्पीच एंड राइटिंग, नेशनल बुक इस्ट, नई दिल्ली।
8. मुखर्जी मृदुला इंडियाज नन बायोलेन्ट रिवोलूशनः प्रेक्टिस एंड थ्योरी, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली।